International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(3): 65-66

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(3): 65-66
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 15-02-2022
Accepted: 21-04-2022

डॉ० वन्दना देवी
संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू और कश्मीर, भारत

Corresponding Author:
डॉ० वन्दना देवी
संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू और कश्मीर, भारत

श्रीमद्भगवतगीता में भक्ति का स्वरूप एवं इसकी वर्तमानकालीन प्रासंगकिता

डॉ० वन्दना देवी

सारांश
गीता ज्ञान के वक्ता स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं। मोहग्रस्त हुए अर्जुन को युद्ध भूमि में दिया गया उपदेश 'श्रीभद्भगवद्गीता' है। 'श्रीभगवद्गीता' भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से निकली है, इसलिए जो व्यक्ति इसका ध्यानपूर्वक तथा मनोयोग से अध्ययन करता है, उसको अन्य वैदिक साहित्य पढ़ने की आवश्यकता नहीं रहती। आज के युग में मनुष्य सांसारिक कार्यों में इतना व्यस्त हैं कि भिन्न ग्रन्थों का अध्ययन करना मुश्किल है। परन्तु श्रीमदभगभद्गीता का अध्ययन पर्याप्त है क्योंकि यही समस्त वैदिक ग्रन्थों का सार है।

शब्द संकेतः परिस्थिति–समय, प्रलयकारी–विनाशकारी, विषादी–दुःखी, कामना इच्छा, लोककल्याण–लोगों के हित के लिए

प्रस्तावना
'श्रीभगवद्गीता' भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा कुरूक्षेत्र युद्ध में अर्जुन को दिया गया उपदेश है। यह वेदान्त दर्शन का सार है एवं अत्यन्त समादरणीय ग्रन्थ है। यह महाभारत के भीष्म पर्व के अन्तर्गत है। यह भगवद्गीता भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को बछड़ा बनाकर उपनिषद रूपी गायों से दुहा गया अमृतमय दूध है, जिसे सुधीजन पीते हैं।[1] भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने इसकी अत्यन्त प्रशंसा करते हुए इसे 'मानवधर्म' का ग्रन्थ बताया है। इसकी तुलना कामधेनु एवं कल्पवृक्ष से की गई है। गीता के महत्त्व का कारण उसकी समन्वय दृष्टि है। स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार–''गीता उपनिषद्ों के उपवन से चुने हुए आध्यात्मिक सत्यों के सुन्दर पुष्पों का एक गुच्छा है। श्रीमती एनी बेसेन्ट के अनुसार–गीता साधक को सन्यास के उस उच्च स्तर पर ले जाती है। जहाँ कामना एवं आसक्ति का त्याग किया जाता है एवं जहाँ योगी समाधिस्थ होते हुए भी शरीर एवं मन से लोककल्याण के लिए कार्य करते हैं।

किसी भी ग्रन्थ की उपयोगिता अथवा उपादेयता इस बात पर निर्भर करती है कि वह हमें जीवन के चरम लक्ष्य तक पहचाने में सहायता करे। इस कसौटी में श्रीमदभगवत् गीता एकदम खरी उतरती है। श्रीमद्भगदगीता युगों से ही अपनी सार्थकता के कारण प्रसिद्ध है। जिस परिस्थिति में गीता का उपदेश दिया गया था, वह विलक्षण थी। महाभारत का प्रलयकारी युद्ध होने जा रहा था, जिसमें भाई के सामाने भाई उसका खून पीने के लिए तैयार खड़ा था। ऐसी दशा में अर्जुन का विषादी होना नितान्त स्वाभाविक था। गीता ज्ञान के वक्ता स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं। मोहग्रस्त हुए अर्जुन को युद्ध भूमि में दिया गया उपदेश 'मद्भगवद्गीता है। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते है कि क्षत्रिय राजपुत्र एवं धर्मरक्षक होने के नाते तुम्हारा कर्त्तव्य है कि वह अर्धम एवं अशुभ से लडे एवं धर्म को विजय बनाये। अर्जुन तर्क–वितर्क करते जाते हैं और भगवान् श्रीकृष्ण उसे समझाते जाते हैं कि युद्ध करना उसका धर्म है, उसे अपने स्वभाव और स्वधर्म का पालन करना चाहिए। ये ध्यान दने योग्य है–कि भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा उपदेश देने पर श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है कि है कि–हे अजुर्न तुम्हारी जैसी इच्छा हो वही तूम करो।[2] और अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण से कहते हैं कि हे प्रभ! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है, अतः मैं वही करूगा जैसा आपने कहा है।[3]

महाभारत के युद्ध के समय गीता का ज्ञान/उपदेश जितना महत्त्वपूर्ण था। आज भी अपनी महत्त्वता की दृष्टि से गीता के ज्ञान की प्रासंगिकता प्रसिद्ध है। आज भी मनुष्य देखा जाए तो अनेक स्वार्थ, मोह में इतना घिर चुका है कि क्या सही है क्या गलत है ये ज्ञान होना मुशकिल है। ऐसे व्यक्ति को गीता का अध्ययन एवं अनुशीलन अवश्य करना चाहिए। एक वही शास्त्र है, जो मनुष्य को एक अच्छा इन्सान बना सकता है।

भगवद्गीता भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से निकली है, इसलिए जो व्यक्ति इसका ध्यानपूर्वक तथा मनोयोग से अध्ययन करता है, उसको अन्य वैदिक साहित्य पढ़ने की आवश्यकता नहीं रहती। आज के युग में मनुष्य सांसारिक कार्यों में इतना व्यस्त हैं कि भिन्न ग्रन्थों का अध्ययन करना मुश्किल है। परन्तु श्रीमदभगभद्गीता का अध्ययन पर्याप्त है क्योंकि यही समस्त वैदिक ग्रन्थों का सार है।[4]

गीता में भक्ति–गीता में अत्यन्त महत्त्व का शब्द 'भक्ति' है, गीता का हृदय 'भक्ति' है। विराट रूपदर्शन के अन्त में इस रूप के दर्शन की साधना बतलाते समय श्रीकृष्ण ने स्वयं प्रतिपादित किया है कि यह देव दुर्लभ रूप, न वेद, न तपस्या, न दान, न इज्या के द्वारा साक्षात्कार किया जा सकता है।[5] इसका एकमात्र साधन है–अनन्या भक्ति। यज्ञ, दान, तप आदि सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मों को, भगवान् को परम आश्रय मानकर उनकी प्राप्ति के लिए सतत् उद्योगशील, भगवान् की सच्ची भक्ति करने वाला, आसक्ति रहित, सम्पूर्ण प्राणियों में वैरभाव से रहित पुरुष अनन्य भक्त कहलाता है। भक्ति का अर्थ उपासना किया जाता है। उपासना का अर्थ भगवान् का निरन्तर स्मरण है। नाम–जप से स्मरण पुष्ट होता है। निरन्तर स्मरण से भगवान् प्रसन्न होकर अपने स्वरूप को प्रकाशित करते हैं। अखण्डचिदानन्द अपरोक्षानुभूति में भक्त का भगवान् से एकीभाव हो जाता है।[6] इस प्रकार परा भक्ति एवं परज्ञान में कोई भेद नहीं रहता। गीता ने बार–बार 'भक्ति' एवं 'ज्ञान' की एकता प्रतिपादित की है। गीता का 'अनन्य' भक्ति[7]" पर बहुत आग्रह है। अनन्य भक्ति से ही भगवत्स्वरूप का ज्ञान एवं भगवत्प्राप्ति तथा भगवान् से तादात्मय सम्भव है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है कि हे अर्जुन! अनन्य भक्ति से ही मेरा तात्त्विक ज्ञान किया जा सकता है। और मुझ में प्रवेश करके मुझसे एकाकार हुआ जा सकता है।[8] यद्यपि परज्ञान एवं पराभक्ति एक ही हैं और ज्ञान एवं भक्ति का चरम लक्ष्य भी भगवत्प्राप्ति ही है, तथापि निर्गुण उपासना को गीता कठिन बताती है एवं सगुण उपासना का उपदेश देती है।[9] गीता का शरणागति पर अत्यन्त बल है। सच्चे हृदय से भगवान् की शरण लेने पर सब कुछ (भगवान्) वे ही संभाल लेते है, साधना के द्वार खुलने लगते हैं। और अंत में भगवदनुग्रह से भगवद्प्राप्ति हो जाती है। श्रीमदभगवद्गीता में भगवन् श्रीकृष्ण अर्जुन को जो अन्तिम परमगुह्य उपदेश देते है कि हे अर्जुन! तू मुझमें निरन्तर मन लगाये रह, मेरी अनन्य भक्ति कर, मुझो सर्वस्य अर्पणकर, मुझे ही प्रणाम कर, ऐसा करने से तू निश्चय ही मुझे प्राप्त करेगा, यह सत्य प्रतिज्ञा है क्योंकि तू मुझो अत्यन्त प्रिय है। तू सब धर्मों को त्याग कर मेरी अनन्य शरण में आ जा, मैं तुझे सारे पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर –

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।।
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मां शुचः।। [10]

गीता में प्रतिपादित भक्ति योग का ज्ञान आज भी मनुष्य जीवन में उतना ही महत्त्वपूर्ण है, उतनी ही आज इस भक्तियोग की प्रासंगिकता है जितनी पहले थी। आज भी ईश्वर की प्राप्ति के लिए एक मात्र साधन 'भक्ति' ही है। जो व्यक्ति सच्चे हृदय से, निश:स्वार्थ भाव से, वैरभाव से रहित ईश्वर की भक्ति करता है निश्चित रूप से ईश्वर का साक्षात्कार सम्भव है। भक्ति ऐसी हो जिसमें स्वार्थ न हो व्यक्ति का कर्म इच्छा रहित हो, ईश्वर की भक्ति करना ऐसा कर्म है जिसमें फल की इच्छा न हो, कि यदि में भक्ति करू तो मुझे इस कर्म से इच्छित फल प्राप्त होगा। तन, मन, बुद्धि एवं अन्तःकरण को भगवान् श्रीकृष्ण में अपर्ण करना एवं फिर अन्तः प्रेरणा से या भागवत प्रेरणा से कर्म करना ही गीता का अनासक्तयोग है। अनासक्तयोग का आधार सर्मपण भाव है। अनासक्तियोग ही भक्ति योग है। जो अपने कर्मों का तथा मन एवं बुद्धि का समर्पण कर देता है अथवा जिसका सारा जीवन ही शरणागतियोग (समर्पणयोग) बन जाता है उसे भगवान् का आधार, सहारा, ज्ञान, दर्शन एवं साक्षात्कार सुलभ होता है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता हैं कि गीता में प्रतिपादित 'भक्ति' युगों से ही भक्त के कल्याण के लिए महत्त्वपूर्ण रही है और युगों–युगों तक भक्त के कल्याण के लिए अमृतमय रहेगी। इसलिए ईश्वर भक्ति में आनन्द लिजिए। जयश्रीकृष्णा।

पाद टिप्पणियाँ

1. सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः। पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत।। गीता माहात्म्य–5
2. इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया। विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरू।। गीता०–18/63
3. नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा तत्प्रसादान्मयाच्युत। स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव।। गीता०–18/73
4. गीता माहात्म्य–4
5. गीता०–11/53
6. गीता०–11/54
7. गीता०–11/55
8. भक्त्या त्वनन्या शक्य..... । गीता०–11/54
9. गीता०–12/5, 6, 7, 8
10. गीता०–18/65–66